राजनीतिक अपराधीकरण और राष्ट्रीय अखंडता पर प्रभाव

[1] अंजीत कुमार चौधरी
[1] सहायक प्राध्यापक,
[1] राजनीति शास्त्र विभाग,
[1] रमाबल्लभ जालान बेला महाविद्यालय, बेला, दरभंगा

सारांश : **राजनीति के अपराधीकरण का पहला शिकार प्रशासन और लिस बने, इसके परिणामस्वरूप कानून की एक व्यवस्था तैयार हुई जो न तो ईमानदार है और न निष्पक्ष । पुलिस सेवा की नैतिकताएं ताक पर रख दी जाती हैं और इसकी वजह से सव्यवस्थित अपराध के विकास को प्रोत्साहन मिलता है, खासतौर से बंबई और दिल्ली जैसे शहरी क्षेत्रों में । अब परंपरागत अपराध जैसे (1) उठाईगिरी, (2) चोरी, (3)सेंधमारी . (4) छीना झपटी और (5) डकैती के दिन लद गए हैं जबकि पहले इन्हीं अपराधों का मुकाबला करना होता था। आज श्संगठित अपराधश पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। इनमें जबरन वसूली (व्यापारियों, बिल्डरों और अब तो फिल्म निर्माताओं से भी), फिरौती के लिए अपहरण, शहरी संपत्ति को जबरन हथियाना और बेचना, मादक द्रव्यों का व्यापार, हथियारों की तस्करी और जघन्य हत्याएं।**

IndexTerms **- राजनीतिक, अपराधीकरण, वैश्विक, संगठन .**

भारतीय प्रशासनिक सेवा के सेवानिवृत्त सदस्य और एक कर्मठ अफसर माधव गोडबोले ने अपनी पुस्तक अनफिनिश्ड इनिंग्स में वोहरा रिपोर्ट को बेमानी बताया है और कहा क इसमें शायद ही कुछ नया है। उन्होंने काफी हताश होकर केंद्रीय गृह सचिव के पद से पतीफा दे दिया थ। असल में उन्होंने जो लिखा वह इस प्रकार है, विशेष बात तो यह है कि महत्वपूर्ण है वह इसमें (रिपोर्ट में) नहीं है । जटिल मुद्दों की चर्चा ऐसे सरसरी तौर पर नहीं की जा सकती है।श स्वभाविक तौर पर, यह रिपोर्ट ठंडे बस्ते में ही पड़ी रही। कुछ वर्षों बाद इस रिपोर्ट की प्रति संसद में पेश करने की मांग पर हंगामा खड़ा हुआ । लोकसभा के पूर्व अध्यक्ष रवी राय के अनुसार, श्संहेहास्पद परिस्थितियों में यह रिपोर्ट संसद में पेश की गई ताकि लोगों का ध्यान नयना साहनी हत्याकांड से हटाया जा सके। इसमें सत्ताधारी पार्टी का एक कार्यकर्ता शामिल थाश लगता है कि वोहरा समिति को दी गई शीर्षस्थ राज नेताओं और माफिया की साठ–गांठ का पर्दाफाश करने वाली कुछ महत्वपूर्ण रिपोर्ट को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया है। इसका एक हिस्सा अब अनौपचारिक तौर पर दिल्ली मे विविध लोगों के बीच चक्कर काट रहा है। इनसे कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं, उनमें से कुछ की चर्चा यहां प्रस्तुत कर रहे इसमें मूल चंद सम्पत राजशाह उर्फ मूलचंद, उर्फ चौकसी, निवासी, 604 रजिन्दर विहार, ग्विल्डर लेन, वेलिंगटन रोड, बंबई की चर्चा की गई है। उसने 1980 में ही दाउद इब्राहिम से घनिष्ट संबंध बना लिया था और वह बंबई में कई महत्वपूर्ण लोगों से पैसा लेकर मध्यपूर्व व अन्य देशों में सुरक्षित रखने के लिए भेजता था। इसमें एक पूर्व मुख्यमंत्री के 20–50 करोड़ रूपए भी शामिल थे। मार्च 1989 में मूलचंद के खिलाफ कोफेपोसा में बंदी बनाने के आदेश जारी किए गए। मई 1990 में महाराष्ट्र के गृह विभाग के एक राजनीतिज्ञ ने इसे रद्द कर दिया था. कथित रूप से दो करोड़ रूपये के एवज में। . मुंबई पुलिस ने अप्रैल 1991 में मूलचंद को गिरफ्तार कर लिया था। उसे मुंबई में 17 अप्रैल 91 को विशेष अदालत में पेश किया गया। वह 24 अप्रैल 1996 तक पुलिस हिरासत में रहा। सीबीआई की पूछताछ में मूलचंद ने कथित रूप से यह दावा किया कि उसे अधिक समय तक हिरासत में नहीं रखा जा सकता और इसी संदर्भ में उसने अपने ऊंचे राजनीतिक संबंधों की चर्चा की। मार्च 1993 में बंबई में हुए बम कांड के बाद मूलचंद फिर आतंकवादियों और अंडरवर्ल्ड को वित्तीय सहायता देने के लिए संदेह के घेरे में आया । बंबई सीआईडी की अपराध शाखा के डीआईजी ने 4 मई 1993 को उसे गिरफ्तार किया और आखिरकार उसे टाडा के तहत उसे न्यायिक हिरासत में रखा गया। रिपोर्ट में इस बात की पुष्टि की गई है कि मूलचंद का राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों में खास दबदबा था। इसकी वजह से और पैसे की उसकी ताकत के कारण राजस्व खुफिया निदेशालय, प्रवर्तन निदेशालय और सीमा शुल्क विभाग गिरफ्तारी के बाद उससे लंबी पूछताछ नहीं कर सका। ईस्ट– वेस्ट एअरलांस भी ईस्ट–वेस्ट ट्रैवल एंड ट्रेड लिंक्स लिमिटेड, बंबई की सहायिका है। इसके चेयरमैन बहरीन में रहने वाले अनिवासी भारतीय हैं। दाउद इब्राहिम से इनके घनिष्ट संबंध थे। खबर थी कि जनता दल के एक नेता ने ईस्ट–वेस्ट एयरलाइंस के लिए उसी के एक निदेशक के जरिए वित्तीय व्यवस्था करने में बिचौलिए का काम किया था। आरोप है कि एक कैबिनेट सचिव ने देना बैंक, इलाहाबाद बैंक आदि से पैसा प्राप्त करने में मदद की थी। समझा जाता है कि एक पूर्व प्रधानमंत्री के निजी सचिव रह चुके उनके एक नजदीकी व्यक्ति ने पैसे जुटाने में कथित रूप से ईस्ट–वेस्ट एयरलाइंस की मदद की और यह पैसा प्रधानमंत्री के करीबी लोगों से जुटाया गया है इनमें खासतौर से एक ऐसे मंत्री भी शामिल थे जो रिपोर्ट तैयार होते समय यानी 1993 में केन्द्र सरकार में थे। यह भी पाया गया कि एक पूर्व प्रधानमंत्री के एक महत्वपूर्ण सलाहकार ने भी दाउद इब्राहिम और उसके गिरोह से ईस्ट–वेस्ट एयरलाइंस के लिए धनराशि का इंतजाम करने के लिए बिचौलिए का काम किया था। रिपोर्ट थी कि उस्मान गनी नामक एक व्यक्ति दुबई में विदेशी मुद्रा

विनिमय का फलता–फूलता व्यापार चलता था। उसने जिन लोगों के लिए यह काम किया उसमें चोटी की कई फिल्मी हस्तियां और बंबई के एक शीर्षस्थ राजनीतिज्ञ का एक नजदीकी वकील भी शामिल था। उस्मान गनी बंबई बम कांड के षडयंत्र में भी शामिल था। दाउद इब्राहिम ने बंबई में सन एन सैंड होटल के करीब जमीन खरीदने के लिए दिल्ली के एक राजनैतिक कार्यकर्ता को 3 करोड़ रूपये दिए थे। यह कार्यकर्ता एक समय एक पूर्व प्रधानमंत्री के काफी करीब था।

देश जानना चाहता है कि बहुप्रचारित वोहरा समिति ने इन सनसनीखेज सूचनाओं का श क्या किया और बाद में क्या ठोस कार्रवाई की गई, ओर क्या इन सभी मामलों में आगे कोई और छानबीन की गई। वोहरा समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों के बावजूद जब कोई मध्यस्थ एजेंसी की स्थापना नहीं की गई तो उचित कार्रवाई की क्या उम्मीद की जा सकती है, खासतौर से तब जब शीर्षस्थ हस्तियों के खिलाफ गंभीर आरोप कानून लागू करने वाली विभिन्न एजेंसियों के पास बरसों धूल चाटती रही और यह सब तब प्रकाश में आया जब सर्वोच्च न्यायालय ने इसमें दखल दिया। सरकार को कार्रवाई के लिए मजबूर करने के लिए सितंबर 1997 में भी ऐसी ही एक दखल की जरूरत पड़ी थी। न्यायालय के निर्देशानुसार, सरकार ने एक तीन सदस्यीय समिति बनाई जिसके चेरमैन प्रधानमंत्री के प्रमुख सचिव वही एनएन वोहरा थे। पूर्व कैबिनेट सचिव बीजी देशमुख और केंद्रीय सतर्कता आयुक्त एमवी गिरि को सदस्य नियुक्त किया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने मार्च 1997 में ही एक उच्च स्तरीय समिति की स्थापना का आदेश दिया था।श आश्चर्य है कि कोई सीबीआई प्रमुख या अन्य गुप्तचर या कानून लागू करने वाली एजेंसी का कोई सदस्य और पेशेवर इस समिति से नहीं जुड़ा था।

एक वर्ष बाद, अगस्त 1995 में केन्द्र ने एक बेहतरीन रिपोर्ट दी। इसमें कार्रवाई और रोकथाम के उपायों की अत्यंत व्यवहारिक और कारगर सिफारिशें थीं। कई कारणों से रिसर्च सेंटर की रिपोर्ट उल्लेखनीय थी। इसमें वर्धा, हाजी मस्तान, युसूफ पटेल, दाउद इब्राहिम, राम नायक. ओम प्रकाश श्रीवास्तव उर्फ बबलू श्रीवास्तव– अरूण गवली आदि जैसे कुछ कुख्यात आपराधिक गिरोहों के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि की छानबीन की गई थी। रिपोर्ट में राजनीतिज्ञों से उनकी साठ–गांठ का विवरण था। इसमें जो कुछ कहा गया उससे वोहरा समिति की रपटों के तथ्यों की पुष्टि होती है। कुछ सनसनीखेज तथ्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। पुलिस रिकार्ड के अनुसार बंबई म्युनिसिपल कारपोरेशन के एक कौंसिलर ने मकाबाला गैंग को एक हत्या के लिए जाने से पहले एकत्रित होने के लिए अपने दफ्तर का प्रयोग करने दिया था। अरूण गवली गैंग ने दाउद इब्राहिम गैंग को धमकी देने के लिए एक पूर्व विधायक मौलना सिनुद्दीन बुखारी की उनके घर के सामने गोली मारकर हत्या कर दी थी। विधायक की हत्या का कारण यह था उन्हें पता था कि विधायक के दाउद इब्राहिम से संबंध थे और एक पूर्व मुख्यमंत्री सहित कई अन्य राजनीतिज्ञों से भी उनके घनिष्ट संबंध थे और शक था कि कानून लागू करने वाले अधिकारियों पर दबाव बनाने के लिए वह इसी राजनीतिक संबंध का इस्तेमाल करता था। जब राम नायक गिरोह का बाबू राशिम और बाद में स्वयं राम नायक की हत्या हुई तो राज्य में सत्ताधारी दल से संबंधित कई विधायकों सहित विभिन्न राजनीतिज्ञ उसकी अत्यंष्टि में शामिल हुए और उसे समाज सेवक आदि बताया गया था। दाउद इब्राहिम के विश्वासपात्र निशानेबाज शुभाष सिंह ठाकुर ने कथित रूप से पुलिस को बताया कि उसने और जेजे हास्पिटल हत्याकांड का सरगना भाई ठाकुर ने एक सांसद के दिल्ली स्थित सरकारी निवास का अपने अस्थायी ठिकाने और सुरक्षित आश्रय के रूप में इस्तेमाल किया था। सांसद ने उनके ठहरने और भोजन की ही व्यवस्था नहीं की थी बल्कि उन्हें फोन की भी सुविधा दी गई थी और वह इनकी गतिविधियों से पूरी तरह अवगत रहता था।

सीबीआई को दिए अपने बयान में भाई ठाकुर ने कथित रूप से उस सांसद के दाउद इब्राहिम गैंग से संबंध को भी पुष्टि की थी। उसने माना कि वह 1992 में डेढ़ महीने दिल्ली में उस सांसद के घर ठहरा था और इसके बाद जब एक बार वह वहां था उसी दौरान सांसद ने बंबई पुलिस द्वारा उनके खिलाफ दर्ज मामलों पर उससे चर्चा की थी। सुभाष सिंह ठाकुर को नेताओं से दोस्ती करने का शौक है। उसी ने बताया कि किस . तरह एक केन्द्रीय मंत्री तक उसकी पहुंच थी, जिसने उसके लिए दिल्ली में एनटीपीसी गेस्ट हाउस में ठहरने का इंतजाम करवाया था। दरअसल, उस सांसद और एक केन्द्रीय मंत्री के भतीजे ने जेजे हास्पिटल गोलीकांड की घटनाओं में खासी दिलचस्पी ली थी। सुभाष सिंह ने बताया कि जब वे हत्याएं करने के बाद सांसद के साथ रह रहे थे तो दाउद इब्राहिम ने दुबई से फोन करके उससे संपर्क किया था। – सुभाष सिंह ठाकुर एक पूर्व प्रधानमंत्री के निजी सचिव से भी परिचित था। उसने कथित रूप से अपने संबंध का इस्तेमाल करके पूर्व प्रधानमंत्री से मुलाकात भी की थी। बाद में सुभाष सिंह ठाकुर के सहयोगी सुनील सावंत और अन्य लोग भी पूर्व प्रधानमंत्री से मिले। इनलोगों को भरोसा दिलाया गया कि मुंबई पुलिस उन्हें उनके खिलाफ दर्ज मामलों में पूरी सहायता देगी।

दाउद इब्राहिम गैंग के कानूनी सलाहकार मनीष लाला ने सीबीआई को दिए बयान में बतया कि जुलाई 1993 में वह पूर्व प्रधानमंत्री के राजनीतिक संगठन के एक महत्वपूर्ण सदस्य को एक मामले को सुलझाने के लिए अपने साथ नेपाल ले गया था, क्योंकि नेपाल पुलिस ने सुनील सावंत के घर पर छापा मारा था और यह व्यक्ति नेपाल के आईबी के प्रमुख को जानता था। सुभाष सिंह ठाकुर के छोटे भाई की शादी एक राजनीतिक दल के युवा घटक के पदाधिकारी के चचेरी बहन से हुई थी। यह शादी जून 1991 में वाराणसी जिले में हुई थी

और दाउद इब्राहिम गिरोह के कई सदस्यों इसमें शामिल हुए थे। जेजे हास्पिटल गोली कांड के संबंध में मुंबई पुलिस द्वारा गिरफ्तार किसी अनिल अमरनाथ शर्मा ने कथित रूप से पुलिस को बताया कि वह पहले एक व्यापारी था मगर एक राजनीतिक दल की युवा शाखा के उपरोक्त पदाधिकारी से अपने संबंधों की वजह से ही वह इन गैंगस्टरों से मिला था। उसी ने शर्मा से कहा था कि वह सुभाष सिंह ठाकुर और सुनील सावंत को उसका विले पार्ले का फ्लैट और वहां लगा फोन इस्तेमाल करने दे। उसने यह भी बताया कि एक पूर्व केंद्रीय मंत्री का भतीजा और निजी सचिव भी गैंग की गतिविधियों में शामिल था, तब वे मंत्री पद पर ही थे।

रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली की भी स्थिति कोई बेहतर नहीं है। हालांकि इस रिपोर्ट में इसका विवरण नहीं है मगर संक्षेप मे ही आजकल विधायक बन चुके एक नेता नेतृत्व वाले कुख्यात गैंग और अन्य शीर्षस्थ नेताओं के बीच साठ–गांठ की चर्चा है। रिपोर्ट में पुलिस और आपराधिक गैंगों के बीच साठ गांठ की भी चर्चा की गई थी। अपराधी रिश्वत आदि के जरिए पुलिस को शांत रखते थे। जब गिरोह का सामना किसी ईमानदार पुलिस अफसर से होता तो राजनीतिज्ञों की मदद से पुलिस पर दबाव बढ़ाया जाता था। रिपोर्ट में कहा गया है कि दाउद इब्राहिम के पिता ने मुंबई सिटी क्राइम ब्रांच से रिटायर होने से पहले कई वर्षों तक हेड कांस्टेबल के पद पर नौकरी की थी। इसलिए, वहां के पुलिस अफसर अभी भी उसे श्अपने आदमी जैसा ही मानते हैं और समझते हैं कि वह भटक गया है। कहा जाता है कि दाउद के पुलिस से भी संबंध हैं और इसका इस्तेमाल वह अपने विरोधियों के खात्मे के लिए करता है। कुछ गैंग तो पुलिस अफसरों और पुलिस स्टेशन के कर्मचारियों को हर महीने पैसे भी देते हैं। दाउद गिरोह का सतीश राजा इस काम में माहिर था और खबर है कि उसकी पहुंच पुलिस विभाग के वरिष्ट अफसरों में ही नहीं, गैंग के मतलब के अन्य विभागों में भी थी । ऐसी सामग्री है जिससे यह संकेत मिलता है कि अमर नाइक के संबंध पुलिस बल में निचले स्तर पर कई लोगों से थे और नाइक की एक निजी डायरी में कई पुलिस अफसरों के नाम और टेलीफोन नंबर दर्ज थे।

शीर्षस्थ राजनीतिज्ञों और अपराधियों की साठ–गांठ के कुछ कथित उदाहरणों की चर्चा तो खुलकर अखबारों मे भी की गई। एक अखबार में शीर्षक था रू ठाकुर का कहना है कि गिरफ्तारी से पहले शेखर से मिला था। उसे कथित रूप से राजधानी में एनटीपीसी के गेस्ट हाउस में रहने की जगह दिलाई गई थी। इंडियन एक्सप्रेस को दिए एक साक्षत्कार में गैंगस्टर सुभाष सिंह ठाकुर ने बतया कि अपने आत्मसमर्पण की व्यवस्था करवाने के लिए वह अपने गिरोह के सदस्य के साथ चंद्रशेखर से मिला था। इससे पहले वह उनके लिए चुनाव प्रचार कर चुका था। उसने दावा किया कि यह बात उसेन सीबीआई को भी बताई थी। यह दिलचस्प है कि चंद्रशेखर के राजनीतिक सचिव एचएनशर्मा ने 11 अगस्त 1993 को ही एक बयान में बताया था कि ठाकुर ने वासतव में फरवरी 1992 में पूर्व प्रधानमंत्री के लिए चुनाव प्रचार किया था और यह भी कि ठाकुर व उसके साथी चंद्रशेखर से उनके भोंडसी आश्रम में मिले थे। बयान इस प्रकार था रू श्मुझे पता चला है कि इनलोगों ने पूर्व प्रधानमंत्री के साथ बंबई पुलिस के पुराने मामलों की चर्चा की थी और वे बंबई पुलिस के समक्ष समर्पण करने के लिए चंद्रशेखर की मदद चाहते थे। उन्होंने यह भी कहा था कि पूर्व प्रधानमंत्री ने ही उन्हें बंबई पुलिस के समक्ष समर्पण करने की सलाह दी थी। इस खबर के अनुसार सीबीआइ ने खुलासा किया था कि ठाकुर और चन्द्रशेखर के संबंधों का ठोस आधार नहीं मिला (इंडियान एक्सप्रेस 1 अप्रैल 1996) । यह सच है कि ऐसी खबरों के आधार पर, आपराधिक सांठ–गांठ को कोई ठोस मामला स्थापित नही किया जा सकता है और अक्सर ऐसी चर्चा सिर्फ वाहवाही लूटने के लिए भी की जाती है। यह भी सही है कि चुनाव में प्रचार के दौरान और वैसे भी राजनीतिज्ञों से हर तरह के लोग मिलते रहते हैं । यह अपने आप में किसी सांठ–गांठ की पुष्टि नहीं करता। मगर यह सत्य भी चिंता का विषय है कि ऐसे लोगों की शीर्षस्थ राजनीतिक पदाधिकारियों और उनके कर्मचारियों तक पहुंच होती है। मुझे यह बताने की जरूरत नहीं है कि कथित रूप से कुछ आपराधिक तत्वों की मदद करने के आरोप में सीबीआई ने बिना पर्याप्त सबूत और उचित जांच के ही कल्पनाथ राय को टाडा में गिरफ्तार कर लिया था। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहते हुए उन्हें बरी कर दिया कि इस बात का कोई ठोस सबूत नहीं मिलता कि मंत्री को पता था कि जिन लोगों को गेस्ट हाउस में रहने की जगह दी गई थी वे आपराधिक गतिविधियों में शामिल थे। न्यायालय ने पाया कि इस मामले में अपराध बोध की कमी थी। पूर्व में सीबीआई वालों के काम करने का तरीका ऐसा नहीं था। और न ही ऐसा अभियोग चलाए जाते थे।

लगभग इन्हीं दिनों तांत्रिक चंद्रस्वामी और कुख्यात अपराधी बबलू श्रीवास्तव के घनिष्ट संबंधों की खबर सुर्खियों में रही। अन्य गतिविधियों के अलावा दाउद इब्राहिम के नजदीकी बबलू श्रीवास्तव पर मार्च 1993 में इलाहाबाद में कस्टम अफसर एलडी अरोड़ा की हत्या की साजिश करने का आरोप भी था। अखबारों के अनुसार एक अन्य मामले में दिल्ली पुलिस द्वारा चार्टशीट किए गए भरत सिंह उर्फ मुन्ना और वीरेंद्र पंत उर्फ छोटॅ तथा संजय खान उर्फ चंकी ने सीबीआई को 1994 में बताया था कि बबलू से उनकी मुलाकात चंद्रस्वामी के दिल्ली स्थित आश्रम में ही हुई थी। 1992 में संजय खान ने कथित रूप से सीबीआई को साफतौर पर बताया था कि वह ओम प्रकाश उर्फ बबलू से चंद्रस्वामी के आश्रम में ही संपर्क में आया था और वह वहां अक्सर आता था। दूसरी तरफ 7 और 27 अक्टूबर 1996 को राजीव

गांधी की हत्या की परिस्थितियों की छानबीन कर रहे न्यायाधीश एमसी जैन आयोग के समक्ष चंद्रस्वामी ने शपथ पूर्वक कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम बताए थे जिन्हें वे जानते थे या जो उनके मित्र धशिष्य थे। उन्होंने अदनान खशोगी के अपने श्सबसे अच्छे मित्रोंश में एक बताया था। उन्होंने कहा कि एक बार जब वे दक्षिणी फ्रांस में खशोगी की नौका श्नबीलाश पर थे तब श्श्री (रूसी) करंजिया श्री अदनानन खशोगी से मिलने आए थे। चंद्रस्वामी ने ब्रनेई के सुलतान से भी परिचित होने का दावा किया और उन्होंने पीवी नरसिंराव, उनके बेटे पीवी राजेश्वरराव, . एलिजाबेथ टेलर, बबलू श्रीवास्तव, उमा भारती, मुलायम सिंह यादव, डाक्टर सुब्रह्मण्यम स्वामी, चंद्रशेखर , आरिफ मोहम्मद खान, टीएन शेषन आदि से भी घनिष्टता का दावा किया था। उन्होंने आगे कहा, पीवी नरसिंहराव से मेरे निजी संबंधों के अलावा वर्तमान सरकार पर मेरा कोई प्रभाव नहीं है। मैं कभी–कभी प्रधानमंत्री निवास पर भी जाता हूं। मेरी कार प्रधानमंत्री के सरकारी निवास में सीधे ड्योढ़ी तक जाती है और प्रवेश के पहले एसपीजी इसकी जांच नहीं करती। चंद्रशेखर के बारे में चंद्रस्वामी ने आयोग को बताया कि चंद्रशेखर के सत्ता में आने के 2 से 3 सप्ताह या एक महीने के बाद (दरअसल वे पंद्रह दिन बाद लौटे थे) मैं विदेश से लौटा था । डाक्टर सुब्रह्मण्यम स्वामी मुझे लेने हवाई अड्डे पर गए थे। हम दोनों हवाई अड्डे से सीधे चंद्रशेखर के भोंडसी आश्रम में गए थे। थोड़ी देर बाद जब अदनान खशोगी यहां पहुंचे तो चंद्रशेखर के निजी सचिव ने हवाई अड्डे पर उनकी अगवानी की। चंद्रस्वामी, खशोगी व अन्य लोग वहां से सीधे चंद्रशेखर के आश्रम गए । एक अन्य रिपोर्ट के अनुसार, 1990 और अप्रैल 1992 के बीच अपराध सरगना दाउद इब्राहिम ने तीन अलग–अलग बिलों का करोड़ों रूपए का भुगतान चंद्रस्वामी को उनके एक अघोषित चौनल आईलैंड बैंक के खाते में किया था। यह महत्वपूर्ण सूचना ओम प्रकाश श्रीवास्तव उर्फ बबलू से पूछताछ के दौरान मिली थी। उसे सिंगापुर में इंटरपोल ने गिरफ्तार किया था। वहां से उसे भारत भेज दिया गया था और यहां उसे सीबीआई को सौंपा गया था। बबलू से पूछताछ में यह भी पता चला था कि दाउद इब्राहिम द्वारा एक सौदे में मुकर जाने की वजह से उसके और चंद्रस्वामी के संबंधों में काफी श्कटुताश आ गई थी। (दि हिन्दुस्तान टाइम्स 14 सितंबर 1995)। इंडियन एक्सप्रेस को दिए एक विशेष साक्षात्कार में बबलू श्रीवास्तव ने दावा किया था कि राजिन्दर जैन की कार में बम रखने वाले मामले में अपना बयान बदलने के लिए उसे पांच करोड़ रूपए की पेशकश मिली थी। अपने पिछले बयान में उसने इसके लिए चंद्रस्वामी को जिम्मदार बतया था । चंद्रास्वामी के वकील ने इस आरोप को श्बकवास श बताया था।

इन इपराधियों के दावे और उनके जवाब इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं। महत्वपूर्ण है ऐसे कुख्यात अपराधियों का शीर्षस्थ राजनीतिज्ञों से घनिष्ठ संबंध द्य जब चंद्रास्वामी ने जैन आयोग को बताया कि वे तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिंह राव के सरकारी निवास पर अक्सर जाते थे और वहां तैनात सुरक्षा कर्मचारी उनकी विधिवत जांच नहीं करते थे तब तत्कालीन आंतरिक सुरक्षा राज्य मंत्री राजेश पायलट ने खुलकर मांग की थी कि चंद्रास्वामी को तुरंत गिरफ्तार किया जाना चाहिए। पायलट ने यह भी माना था कि श्इससे सरकार की विश्वसनीयता को ठेस पहुंची है। इसका खुलासा करते हुए पूर्व आंतरिक सुरक्षा मंत्री ने प्रेस को बताया कि श्सोबीआई और इसके राजनीतिक आकाओं के अनुचित कार्य व्यवहार ने न सिर्फ सरकार को शर्गिन्दा किया था बल्कि इससे यह धारणा भी बलवती होती रही थी कि कुछ उच्च पदस्थ लोग तांत्रिक के पीछे थे। उन्होंने बताया कि इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि चंद्रास्वामी ने अदनान खशोगी जैसे अंतर्राष्ट्रीय लोगों से संबंध बना लिया था और देश की सुरक्षा के लिए खतरा बन चुके थे। मगर सरकार उनके खिलाफ कार्रवाई नहीं कर पाई क्योंकि उनके दावे के अनुसार वे सत्ताधारियों के करीबी मित्र थे। पायलट ने यह भी कहा कि चंद्रास्वामी के खिलाफ बयान देने का खामियाजा उन्हें भुगतना पड़ा । (दि हिंदुस्तान टाइम्स 4 मई 1996) । इस दौरान एकाएक राजेश पायलट को गृह मंत्रालय से हटाकर पर्यावरण मंत्रालय में भेज दिया गया था।

अन्य बातों के अलावा ऐसी स्थिति ने भी हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा पैदा कर दिया था। पर इसकी किसी ने अधिक परवाह नहीं की। सिर्फ बाहरी हमलों से ही राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा नहीं होता बल्कि ऐसी स्थिति से भी होता है। विदेशी एजेंसियों, खासतौर से इंटर सर्विस इंटेलिजेंस और ड्रग माफिया से साठगांठ रखने वाले संगठित आपराधिक गैंगों की शीर्षस्थ राजनीतिक अधिकारियों तक सीधी पहुंच होती है और वे अपनी आवश्यकतानुसार उनका इस्तेमाल कर सकते हैं। वास्तव में सेंट किट्स कांड न सिर्फ आपराधिक प्रवृतियों को, बल्कि सत्ता की राजनीति में अधिनायकवादी प्रवृतियों को भी उजागर करता है और इस मामले में यह अभूतपूर्व है। इसके अलावा, इस मामले से यह भी पता चलता है कि चंद्रास्वामी और हथियारों के कुख्यात सौदागर अदनान खशोगी तथा उनके लोगों एवं कनाडा के ड्रग माफिया के साथ राजनीतिज्ञ किस तरह की सौदेबाजी करते हैं। इन लोगों ने सेंट किट्स को कर चोरी और काले पैसे को सफेद बानाने तथा नशे की सौदागरी से कमाए पैसे को खपाने का अड्डा बना दिया था। 1988 के शुरू में सीबीआई ने धोखाधड़ी के एक मामले में चंद्रास्वामी को गिरफ्तार किया । बीमार होने के नाम पर उनहें दिल्ली के एक नर्सिग होम में भीर्ती किया गया। आगे चलकर इसे लाखूभाई पाठक धोखाधड़ी मामले के नाम से जाना गया। इस मामले में राजनीतिक रूप से संवेदनशील व्यक्तियों को नजरअंदाज करने और चंद्रास्वामी तथा उसके सहयोगी कैलाश नाथ अग्रवाल उर्फ मामाजी के खिलाफ कार्रवाई में बड़ा ही चुनिंदा तरीका अपनाया गया। स्पष्ट रूप से इसका उद्देश्य

चंद्रास्वामी को घेरना था। उसने उस समय कुछ हलकों में यह कह रखा था कि उसके पास बोफोर्स मामले में दी गई कथित दलाली से संबंधित कुछ दस्तावेज हैं। जनहित में इस मामले पर नजर रख रहे प्रमुख पत्रकारों और वकीलों ने पता लगाया कि वास्तव में चंद्रास्वामी, राजीव सरकार और उनके समर्थकों के खिलाफ इसका इस्तेमाल कर रहा था। सेंट किट्स घोटाला 1988 के अंत में उस वक्त प्रकाश में आया जब कुवैत के अखबार अरब टाइम्स ने इस संबंध में एक खबर छापी। खबर में कहा गया था कि फर्स्ट ट्रस्ट कारपोरेशन लिमिटेड, सेंट किट्स मे अजेय सिंह के नाम से 29479 नंबर का एक खाता खोला गया था और वीपी सिंह को लाभग्रही दिखाया गया था। खबर में यह भी कहा गया था कि 16 सितंबर 1996 से 26 मार्च 1987 की अवधि में इस खाते में 6 दफा पैसे जमा करवाए गए जो 20 लाख अमेरिकी डालर के बीच थे। इनका मुल योग 210 लाख अमेरिकी डालर होता था और कथित रूप से बाद में यह पूरी राशि बैंक से निकालकर 13 फरवरी 1988 को शेष रकम शून्य कर दी गई थी। – दो भारतीय अखबारों, एमजे अकबर के संपादन में कलकत्ता से निकलने वाले दि टेलीग्राफ और दिल्ली के दि हिंदुस्तान टाइम्स ने इस खबर को काफी प्रमुखता से प्रकाशित किया। लेकिन इंडियन एक्सप्रेस में 26 अगस्त 1989 को प्रकाशित श्इंडिया एब्रोड न्यूज सर्विस की खबर में इनवेस्टमेंट कंपनी के वकील टेरेंस वी बायरॉन के हवाले से कहा गया था कि . अरब टाइम्स ने अपनी खबर में जो जानकारी दी थी वैसी कोई राशि वीपी सिंह या उनके पुत्र अजेय सिंह ने फर्स्ट ट्रस्ट कारपोरेशन लिमिटेड में जमा नहीं कराई है। इस रिपोर्ट में बायरॉन के हवाले से कहा गया था कि यह इंवेस्टमेंट कंपनी जार्ज मैकलीन के दिवालिया हो जाने के कारण 1988 में समाप्त हो गई थी। जार्ज मैकलीन ने ही 1985 में इस कंपनी का गठन किया था। मैकलीन के एक पूर्व सहयोगी अब बायरॉन के लिए काम करते है। उन्होंने भी इस बात की पुष्टि की और इंडिया एब्रोड न्यूज सर्विसश को बताया कि कंपनी में उस तरह के नंबर का कोई खाता नहीं था और न ही सिंह नाम के किसी व्यक्ति का उसमें कोई खाता था। 31 अगस्त 1989 को दि टेलीग्राफ ने बड़ी तत्परता से एक खबर छापी जिसका शीर्षक था फर्स्ट ट्रस्ट ने दस्तावेज दिखाने से इंकार किया रू मैकलीन ने जोर देकर कहा कि वीपी सिंह के नाम का खाता अस्तित्व में है। हिन्दुस्तान टाइम्स ने तथाकथित श्समझौतेश को प्रकाशित किया। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर कांग्रेस प्रवक्ता के बयान और आरोपों को प्रसारित किया गया। इंडियन एक्सप्रेस के तत्कालीन संपादक अरूण शौरी ने लिखा ष्शासकों की ओर से एक फ्रॉड के खिलाफ कानूनी कार्रवाई कौन करेगाष् आखिरकार, इस मामले की सरकारी श्जांच कराई गई। तत्कालीन सरकार ने प्रवर्तन निदेशालय को यह काम करने का निर्देश दिया था। प्रवर्तन निदेशालय ने जब वी0पी0 सिंह के पुत्र अजेय सिंह के खिलाफ एक मामला दर्ज किया तो मशहूर वकील राम जेठमलानी ने निदेशालय के निदेशक को लिखे एक खुले पत्र में उन आधारों को चुनौती दी जिस पर उन्होंने यह मामला दर्ज किया गया था। उन्होंने इस आरोप को श्पूर्ण रूप से मनगढंतश बताया। सीबीआई की जांच से यह पता चलता है कि प्रवर्तन निदेशालय के उप निदेशक एपी नंदी की जांच अभियुक्तों, चंद्रास्वामी, कैलाश नाथ अग्रवाल, अदनान खशोगी उनकी भतीजी के पति लैरी कोल्ह आदि की मिलीभगत से पूरी की गई थी। विदेश मंत्रालय और वित्त मंत्रालय के अनेक वरिष्ठ अधिकारियों, प्रवर्तन निदेशक के0 एल0 वर्मा, आरके धवन एवं कैप्टन सतीश शर्मा जैसे राजनीतिज्ञों ने जांच कार्य का दिशा निर्देशन किया और हर संभव सहायता उपलब्ध कराई । पीवी नरसिंह राव उस वक्त विदेश मंत्री थे, उन्होंने इस काम में सहयोग प्रदान किया और विदेश राज्य मंत्री के के तिवारी ने पूरे मामले में सक्रिय भूमिका निभाई। इस प्रकार, एक सुनियोजित तरीके से की गई जांच–पड़ताल के आधार पर तत्कालीन वित्तमंत्री एडुअर्डो फलेरियों ने लोकसभा में एक रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट में कहा गया कि जांच में ऐसे बैंक खाते के अस्तित्व की पुष्टि हुई है। लिहाजा, इस रिपोर्ट ने लोकसभा में कुछ कांग्रेस (ई) सांसदों को वीपी सिंह की निंदा करने का एक बेहतरीन अवसर प्रदान कर दिया। उस वक्त संपूर्ण विपक्ष ने सदन का बहिष्कार कर रखा था और सदन में चल रही एकतरफा बहस में राजीव सरकार में मंत्री के0 के0 तिवारी सबसे मुखर थे।

दल–बदल की राजनीति और राजनीतिक अपराध

भारतीय राज–व्यवस्था संसदीय लोकतंत्र को प्रतिबिम्बित करती है। यहाँ शासन संचालन में सत्ता पक्ष एवं विपक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समस्त राजनीतिक दलों का यह लक्ष्य होता है कि अपनी नीतियों से जनता को प्रभावित करते हुए. चुनाव में उसका व्यापक समर्थन प्राप्त करके स्पष्ट बहुमत से अपनी सत्ता स्थापित कर देश हित में, जनहित में अपनी नीतियों को लागू करें। सत्ता प्राप्ति के इस खेल में जिस राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त होता है, वह सत्ता पक्ष का निर्माण करता है और शेष अन्य दल विपक्ष के रूप में सत्ता पक्ष को निरंकुश बनने से रोकने एवं जनहित में शासन के समुचित संचालन में अपना सकारात्मक सहयोग प्रदान करने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाते हैं।

भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ समय तक तो विपक्ष की भूमिका, सीमित संख्या के बल के बावजूद, प्रशंसनीय रही किन्तु बाद के दिनों में (विशेष रूप से 1967 के चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात) विपक्षी दलों के अनेक महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों में सत्ता के प्रति आकर्षण की तीव्रता परिलक्षित होने लगी। यह वह समय था, जब हिन्दुस्तान के राजनीतिक रंग–मंच कर कांग्रेस पार्टी के एक छत्र प्रभाव में पराभव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा और अब तक सत्ताविहीन तमाम राजनीतिज्ञों को यह आभास होने लगा कि जोड़–तोड़ आदि के माध्यम से

स्वयं सत्ता में भागीदारी कर सकने में सक्षम हो सकते हैं। यह देखा गया कि ऐसे श महात्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ पद, प्रतिष्ठा एवं धन की लालसा में अपने मूल कर्तव्यों से विमुख होकेर, अनेक निर्णायात्मक अवसरों पर अपने दल के निर्देशों की अवहेलना करते हुए, अनुशासन के विरूद्ध जाकर, कुछ निहित स्वार्थों के चलते सत्ता पक्ष अथवा शक्तिशाली समूहों के साथ जुड़कर उनके सुर में सुर मिलाने लगे। सामान्य अर्थों में उनके इसी व्यवहार को दल–बदल की संज्ञा प्रदान की गई है। इसे कार्पेट क्रासिंग भी कहते है। चूंकि जनता द्वारा निर्वाचित ऐसे राजनीतिज्ञों द्वारा किया जाने वाला यह आचरण पद, प्रतिष्ठा एवं धन प्राप्ति की अभिलाषा की पृष्ठभूमि पर आधारित होता है। अतः इसे भ्रष्टाचार के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता और जो राजनीतिज्ञ को अपराधी बनाने में सहायक होता हैं।

दल–बदल आज भारतीय राज–व्यवस्था के सम्मुख एक गंभीर संवैधानिक संकट को जन्म देने का कारण बन चुका है। यह अवसरवादी राजनीतिज्ञों के लिए कम से कम समय में अधिक से अधिक अर्थोपार्जन करने तथा सरकार के ऊपर, अवसर का लाभ उठाते हुए, दबाव डालकर अपने निजी हितों की पूर्ति के एक सशक्त माध्यम के रूप में सामने आया है। साथ ही इसने अपराध को एक नया आयाम दिया है। वस्तुतः दल–बदल के माध्यम से सत्ता प्राप्त करने की राजनीति ही दल–बदल की राजनीति है। इसे ष्अवसरवादिता की राजनीतिष भी कहते है । अवसरवादिता की राजनीति के कारण आज भारतीय राजनीति दल–बदल की राजनीति बन गई है। जो भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अपराध के अनेक कारकों में से एक दल–बदल आंग्ल भाषा में प्रयुक्त षडिफेक्शनष शब्द का हिन्दी पर्याय है। सैन्य शब्दावली में षडिफेक्शनश शब्द का प्रयोग किसी सैनिक का सेवा छोड़कर भागने अथवा दूसरे पक्ष में मिल जाने के लिए होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से व्यापक राजनीतिक अर्थों में इसका प्रयोग किसी ऐसे जनप्रतिनिधि का उस राजनीतिक दल, जिसे चुनाव चिन्ह पर वह . निर्वाचित हुआ है, को त्याग कर किसी अन्य दल में सम्मिलित हो जाना है। किसी विधायक या संसद द्वारा किया गया ऐसा आचरण दल–बदल की श्रेणी में माना जाएगा यदि वह

- किसी दल विशेष के टिकट पर निर्वाचित होकर उसे छोड़ देता है अथवा किसी अन्य राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है। सामान्य निर्वाचन में निर्दलीय सदस्य के रूप में निर्वाचित होने के पश्चात् किसी दल विशेष में शामिल हो जाता है।
- अपना दल छोड़कर निर्दलीय बन जाता है।
- अपने दल की मौलिक नीतियों का विरोध करता है, या दलीय सचेतक के निर्देशों को नहीं मानता है।
- पद–लिप्सा अथवा अधिक लाभ के लिए दूसरे दलों में सम्मिलित हो जाता है।
- जब संविद सरकार को कोई एक या अनेक घटक उस पक्ष को छोड़कर अन्य घटकों में सम्मिलित हो जाते है।

उपरोक्त को दृष्टिगत रखते हुए दल–बदल को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है कि, ष किसी विधायक का अपने दल अथवा निर्दलीय मंच का परित्याग, कर किसी अन्य दल में जा मिलना या दल बना लेना, निर्दलीय स्थिति अपना लेना अथवा अपने दल की सदस्यता त्यागे बिना किसी मूलभूत प्रश्न पर सदन में उसके विरूद्ध मतदान करना दल–बदल कहलाता है। जहां तक दल–बदल और दल–विभाजन की बात है, दोनों के प्रेरक तत्वों में समानता होती है। दोनों में यह समानता कभी–कभी संवैधानिक संकट भी पैदा कर देती है। फिर भी कुछ अर्थों में दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। वस्तुतः दल–बदल का मुख्य कारण पद एवं सत्ता की प्राप्ति होता है। जबकि दल–विभाजन अधिकांशतया दल के नेताओं में मतभेद प्रबल होने . के कारण होते है। दल विभाजन द्वारा किसी दल के कुछ सदस्य एक निश्चित संख्या में अलग होकर 52 वें संशोधन के बाद एक तिहाई अपना दल बना लेते हैं और नए दल में उनका वर्चस्व बढ़ जाता है, किन्तु दल–बदल एक दूसरे दल में जाने पर उन्हें पद भले ही प्राप्त हो जाए उनका वर्चस्व नहीं रह जाता हैं।

भारतीय राजनीति में दल–बदल का इतिहास उतना ही पुराना है जितना राजनीतिक दलों का अस्तित्व । भारत में दल–बदल की राजनीति का प्रारंभ बहुत अंशों में व्यापक व्यस्क मताधिकार पर आधारित निर्वाचन प्रक्रिया से हुआ। विकास और समायोजन को लेकर उपलब्ध सीमित साधनों के वितरण में खींच–तान और पारस्परिक प्रतियोगिता से उसका अभिसिंचन हुआ । भारतीय राजनीति में दल–बदल कर प्रारंभ स्वतंत्रता प्रापत के पूर्व हो चुका था लेकिन उसका विकृत रूप सन् 1967 के पश्चात् सामने आया। जिसने प्रतिष्ठित राजनेताओं को भी अछूता नहीं छोड़ा।ष दल–बदलष के विकास के दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है। स्वतंत्रता पूर्व दल–बदल की राजनीति और राजनीतिक अपराधः । स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व दल–बदल भारत में उतना अभी प्रचलित नहीं था जितना सन् 1967 के सामान्य निर्वाचन के पश्चात् दिखाई पड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व केन्द्रीय विधायिका में दल–बदल होते रहे । दल–बदल स्पष्ट रूप में 1937 में सामने तब अया जब श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम उत्तर प्रदेश विधानसभा के लिए मुस्लिम लीग के टिकट पर निर्वाचित हुए और दल–बदल करके कांग्रेस पार्टी में सम्मिलित हो गए। श्री इब्राहिम को भारतीय राजनीति के दल–बदल के इतिहास में श्प्रथम दल–बदलश के रूप में जाना जा सकता है। श्री इब्राहिम के साथ ही साथ लगभग आधा दर्जन निर्दलीय विधायकों ने भी कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की। इस घटना की पुनराव

ति मार्च 1945 में बंगाल में देखने को मिलनी है, जहां ष्ख्वाजा निजामुद्दीनष् की मुस्लिम लीग सरकार के पतन का कारण नवाब बहादुर तथा उनके 15 विधायक साथियों द्वारा किया गया दल–बदल बना।

स्वतंत्रता पश्चात दल–बदल की राजनीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस पार्टी, व्यापक रूप से, पूरे देश में अकेली प्रमुख राजनीतिक दल के रूप में स्थापित हो गई और सत्ता की बागडोर उसके हाथ में आ गई। कांग्रेस सत्ताधारियों की सम्पन्नता और भौतिक सुख–सुविधाओं को देख कर अन्य राजनीतिक दलों के लोग उसकी तरफ आकृष्ट होने लगे। राजनीतिज्ञों में यह धारणा घर कर गई कि सत्ता ही वह सोपान है जो किसी भी अकिंचन को विपुल धनराशि का स्वामी बना सकता है। सत्ता प्राप्ति की इस लालसा ने राजनीति में नैतिकता के आदर्श को गहरी चोट पहुंचाई और भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक अपराध को बढ़ावा दिया। सत्ता प्राप्ति के लिए तरह–तरह के साधन अपनाए जाने लगे जिनमें से एक प्रमुख साधन, दल–बदल को व्यापक स्वीकृति प्राप्त होने लगी।

दल–बदल के प्रथम चरण में कांग्रेस पार्टी के सदस्यों द्वारा सैद्धांतिक एवं व्यक्तिगत मतभेद तथा आंतरिक जोड़–तोड़ कर दल–बदल कर के अधिक मामले अस्तित्व में आए. जिनमें एक प्रमुख उदाहरण मार्च, 1948 में समाजवादी कांग्रेस पार्टी में उ0 प्र0 विधान सभा के 13 सदस्यों द्वारा आचार्य नरेन्द्र देव के नेतृत्व में पार्टी छोड़ने का है। इसके अतिरिक्त सन् 1951 में आचार्य जे0 वी0 –पलानी एवं रफी अहमद किदवई द्वारा कांग्रेस पार्टी की गुटबन्दी के कारण पार्टी छोड़कर किसान मजदूर पार्टी का गठन भी है। उल्लेखनीय है कि इस अवधि में दल–बदल एकतरफा था। क्योंकि अधिकांशतया कांग्रेस पार्टी के ही सदस्य दल–बदल किया करते थे। यही नहीं इसके कारण कोई राज्य सरकार गिरी नहीं बल्कि केवल सत्ता नेतृत्व में ही परिवर्तन हुआ। जोड़–तोड़ की राजनीति के कारण ही सन् 1951 के प्रजाब में राष्ट्रपति शासन लागू हुआ । ज्ञातव्य है कि कांग्रेस पार्टी में मुख्यमंत्री पद के लिए पंजाब, मद्रास एवं उड़ीसा में व्यापक प्रतिस्पर्धा थी। पंजाब में डॉव गोपीचन्द्र भार्गव को भीमसेन सच्चर ने सत्ताच्युत किया। पुनः श्री सच्चर, भार्गव द्वारा अपदस्थ किए गए। इसी कारण पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू हुआ। इस काल की प्रमुख बात यह थी– दल बदलने वाले व्यक्तियों ने अधिकतर नीतिगत आधार पर दल–बदल किया। उनका उद्देश्य सरकार को अपदस्थ करना नहीं था। दल–बदल का द्वितीय चरण सन् 1952 से 1966 तक रहा। इस काल में यद्यपि कांग्रेस पार्टी से भी विधायकों ने दल–बदल किए लेकिन विशेषता यह रही कि इससे कांग्रेस पार्टी को कुछ विशेष हानि नहीं हुई । इसके विपरीत विपक्षी दलों के विधायकों के टूट कर . कांग्रेस में आने से लाभ कांग्रेस को मिला । दल–बदल के कारण चार राज्य सरकारें जो कांग्रेस द्वारा शासित थीं। यथाय सन् 1952 में पूप्सू में कर्नल रघुवीर सिंह, 1954 में आंध्र प्रदेश में टी0 प्रकाशम्, 1956 में पी0 गोविन्द मेनन् एवं 1964 में आर0 शकर की सरकार अपदस्थ हुई।

इस काल में विरोधी दलों से अधिकतर विधायक कांग्रेस में आए, किन्तु दल–बदल करने वाले नेता विरोधियों को मिलाकर सरकार बनाने का साहस नहीं कर सके। इस अवधि में कुल 542 विधायकों ने दल–बदल किया जिसमें से अधिकांश निर्दल थे। कांग्रेस के पक्ष में परिवर्तन करने वाले नेताओं ने कुछ क्षेत्रीय दल, जैसे–केरल कांग्रेस, बंगाल कांग्रेस, जनतांत्रिक कांग्रेस, भारतीय क्रांति दल आदि का गठन किया। दल–बदल का तृतीय चरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण था जो सन् 1967–1971 तक रहा। यह निम्नलिखित विशेषताओं के कारण पूर्व में हुए दल–बदल से भिन्न था। 1967 से पूर्व तक जो दल–बदल ष्एकतरफाष् इस काल में ष्दो तरफाष् हो गया । इस काल में हुए दल–बदल से विरोधी दलों को लाभ और कांग्रेस की अपेक्षाकृत अधिक क्षति उठानी पड़ी। इस अवधि में दल–बदलुओं की संख्या में अधिक वृद्धि हुई। सन् 1967 (केवल एक वर्ष में) 438 विधायकों ने दल–बदल किया। उसमें से कुछ ने कई बार . दल–बदल किया। इस अवधि में दल–बदलुओं की अल्पमत सरकार बनी जिसको बाहर से कुछ दलों का समर्थन प्राप्त था। इस चरण के दल–बदल ने राजनीतिक अस्थिरता को भी जन्म दिया। राजनीतिक अस्थिरता के कारण चार वर्षों की अवधि में ही 10 राज्यों में 32 सरकारें अपदस्थ हुई, 22 बार राष्ट्रपति शासन लागू हुआ और 7 राज्यों में मध्यावधि चुनाव भी हुए। सन् 1967 के पूर्व दल–बदल में राज्यपाल की कोई भूमिका नहीं होती थी, परंतु 1967 के पश्चात् दल–बदल पर वे भी विशेष भूमिका निभाने लगे। दल–बदल का चतुर्थ चरण का काल 1972 से 1976 तक का रहा। इसकी विशेषता यह देखी गई कि इस बीच दल–बदल एकतरफा रहा जो कांग्रेस के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ अर्थात् विपक्षी दलों से नेता दल–बदल कर कांग्रेस में आते रहे । परिणामस्वरूप जहां गैर–कांग्रेसी सरकारें थीं वहां कांग्रेस की सरकारें बनीं जैसे–गुजरात, मणिपुर एवं उड़ीसा। इस अवधि में राजनीतिक अस्थिरता में कमी आई और विभिन्न प्रांतों में राष्ट्रपति शासन भी 1967–72 की तुलना में कम लागू हुआ। दल–बदल का पंचम चरण 1977 के सामान्य निर्वाचन के पश्चात् प्रारंभ हुआ । जनता पार्टी की सरकार बनी और मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने, जिन्होंने राज्य सभा के कांग्रेसी सदस्यों को जनता पार्टी में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया । दल–बदल का यह आमंत्रण न केवल केन्द्र बल्कि राज्यों में भी था। इस अवधि की मुख्य बात यह थी कि दल–बदलुओं को मुख्यमंत्री पद भी प्राप्त हुए। जैसे वाई, सैजा

जो दल–बदल कर जनता पार्टी में आए उन्हे मणिपुर का मुख्यमंत्री बनाया गया। असम में जोगिन्दर सिंह हजारिका जनता पार्टी से दल–बदल कर असम जनता दल में आए, जिन्हें मुख्यमंत्री बनाया गया। इतना ही नहीं मणिपुर के जनता पार्टी और असम जनता दल के सभी विधायक दल–बदलू ही थे। इस अवधि में सामूकि नेतृत्व की प्रवृति बलवती हुई परंतु दलों की आंतरिक गुटबंदी भी प्रबल होती गई जिसका सर्वाधिक प्रभाव जनता पार्टी पर ही पड़ा । परिणाम अंततः जनता पार्टी के पतन के रूप में दिखाई पड़ा। दल–बदल का छठा चरण 1980 के लोकसभा के निर्वाचन से प्रारंभ हुआ इस निर्वाचन रू में कांग्रेस आई. को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और दल–बदल की प्रवृति में पुनः तेजी दिखाई पड़ी। फरवरी, 1980 से फरवरी 1982 तक 7 राज्य सरकारें अपदस्थ हुई। दो गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें कांग्रेस आई0 के प्रति वफादार हो गई, जैसे सिक्किम में काजी लेंदुप दोरजी (जनता पार्टी) की सरकार और हरियाणा में भजन लाल (जनता पार्टी) की सरकार (1980)। इस दौरान केन्द्र में इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस आई. की सरकार थी जिसने अपनी सत्ता का दुरूपयोग करते हुए दल–बदल की प्रवृति को बढ़वा देकर कई प्रांतों जैसे–असम, मणिपुर आदि में सरकार बनाने अथवा सरकार गिराने का कुस्तित खेल भी खेला। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का दल और प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रित स्थापित था, परिणामस्वरूप जो दल–बदल हुए उनमें कांग्रेस ही लाभ की स्थिति में रही।

भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार एवं अपराध को बढ़ावा देने में दल–बदल की राजनीति

राजनेताओं में नैतिकता का अभाव

भारतीय राजनीति में अधिकांश खिलाड़ी सदैव सत्ता प्राप्त करने और सत्ता प्राप्त होने पर उसे किसी भी कीमत पर बनाए रखने की मनोवृत्ति पाले हुए हैं। इसे अवसरवादिता की राजनीति भी कहा जाता है। इस नीति के अन्तर्गत क्रमशः धर्मनिरपेक्ष तथा धर्म सापेक्ष, वामपंथी एवं दक्षिण पंथी, उदारवादी एवं अनुदारवादी परस्पर विरोधी होते हुए भी संयुक्त रूप से खुले तौर पर सत्ता प्राप्ति हेतु आपस में गठबंधन करते देखे गए। जिस आसानी से वे एक दल का परित्याग कर दूसरे दल में सम्मिलित हो जाते हैं, उससे यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि वे किसी राजनीतिक सिद्धांत अथवा किसी दल की राजनीतिक विचारधारा को महत्व नहीं देते है। इसके अतिरिक्त चूंकि विभिन्न दलों में विचारात्मक ध्रुवीकरण नहीं है और उनके मतभेदों का स्वरूप धुंधला है, अतः जब कोई सदस्य अपने दल से संबंध विच्छेद कर किसी अन्य दल में सम्मिलित होता है तो उसमें विचारधारा के परिवर्तन का कोई प्रश्न नहीं उठता द्य भारत के सभी राजनीतिक दलों के प्रत्याशियों का चयन नैतिकता, आदर्श तथा सिद्धांतों के आधार पर नहीं, बल्कि चुनाव में येन–केन–प्रकारेण उनके चुनाव जीतने की योग्यता को ध्यान में रखकर किया जाता है, ऐसी स्थिति में दल–बदल नहीं होगा यह विचार रखना अपने आप में तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता । परिणामस्वरूप दल–बदल भी राजनीति को अपराधिकरण बनाने में सहयोग देता हैं।

प्रभवशाली नेतृत्व का अभाव

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों में तेजी से बदलाव आया। 1977 के बाद तो राजनीति के क्षेत्र में अप्रत्याशित परिवर्तन दिखाई पड़ा, क्योंकि इस चुनाव के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी को छोड़कर कोई भी ऐसा शिखर का व्यक्तित्व नहीं रहा जो अपने दल पर नियंत्रण रख सकता था। कांग्रेस या गैर–कांग्रेसी दलों के सभी तमाम नेता अब एक ही स्तर के है। यद्यपि 1984 में श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद सन् 1985 के आम चुनाव में राजीव गांधी दो–तिहाई बहुमत से ऐतिहासिक उपलब्धि के साथ सत्ता आसीन हुए, लेकिन वे अपने वर्चस्व को बहुत दिनों तक बनाए नहीं रह सकें । कांग्रेस के अन्दर ही वी0 पी0 सिंह के नेतृत्व में उनके खिलाफ विरोध प्रस्ताव हो गया, जो बाद में कांग्रेस को अपदस्थ करने का कारण बना। . इस प्रकार सन् 1985 के पश्चात् भारतीय राजनीति ऐसे प्रभावशाली नेताओं से वंचित हो गई जो पार्टी पर प्रभावशाली नियंत्रण रख सके। अवसरवादिता की राजनीति ने अब व्यापक रूप से स्थान ग्रहण कर लिया। परिणामतः राजनीति को अपराधीकरण होना जोड़ पकड़ लिया।

राजनीतिक दलों की आंतरिक गुटबंदी

भारतीय राजनीतिक दलों में आंतरिक गुटबंदी सदैव पाई जाती रही है। प्रायः इन गुटों का उद्देश्य आने दल के वरिष्ठ नेताओं से कुछ ऐसे विशेष हितों को दवाब डालकर मनवाना होता है जिसे वे स्वयं अकेले या असंगठित होकर नही रह सकते। प्रभावशाली व्यक्ति अपने प्रभाव से दल में गुट बनाकर अपना स्थान और भी उच्च बनाने का प्रयास करते हैं तथा अवसर आने पर गुटबंदी के सहारे उच्च राजनीतिक शिखर पर पहुंच जाते हैं। गुटबंदी के कारण ही कांग्रेस, जनता पार्टी, भा० ज0 पा0] जनता दल, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, बसपा, असम गण परिषद् तेलगुदेशम, डीध्एम0के0 आदि राजनीतिक दलों के सदस्यों द्वारा समय–समय पर या तो दल–बदल किया गया अथवा नये दल का निर्माण किया गया जिसमें अपराधियों को भी जगह दिया गया। दल के वरिष्ठ सदस्यों की उपेक्षा रू दल–बदल की संस्कृति के विकास मे, राजनीतिक दलों द्वारा अपने ही दल के विरष्ठतम सदस्यों को निर्वाचन के पूर्व टिकट के बँटवारे के प्रश्न को लेकर, वरिष्ठ सदस्यों के संबंध दल के अध्यक्ष या सर्वोच्च नेता से तनावपूर्ण होने पर, सुपात्र होने पर भी मंत्री मण्डल के गठन के समय वरिष्ठ सदस्यों की उपेक्षा

कर देने पर अथवा अन्य यथोचित् सम्मानों से वंचित करने से उत्पन्न होने वाला असंतोष भी प्रमुख कारक रहा है जो अपराधियों से संपर्क करने पर मजबूर करता रहा है।

आर्थिक प्रलोभन

आर्थिक प्रलोभन ने भी दल–बदल के साथ–साथ राजनीति में अपराधीकरण को प्रोत्साहित करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। इसकी प्रमाणिकता हरियाणा के तत्कालनीन राज्यपाल महामहिम वी0 एन0 चक्रवर्ती द्वारा राष्ट्रपति को भेजी गई रिपोर्ट से सिद्ध होती है, जिसमें कहा गया था कि, ष्दोनों पक्षों की ओर से खुल्लम–खुल्ला ये आरोप लगाया जा रहा है कि दल–बदल कराने के लिए रूपया पानी की तरह बहाया जा रहा है।ष इसी प्रकारं 28 फरवरी, 1969 को गृहमंत्री वाई0 वी0 चाह्वाण ने लोकसमा को बताया कि दल–बदल की कीमत हरियाणा में 20 हजार से 40 हजार रूपया आंका जा रहा था। दसवीं लोक सभा में झा. मु. मो. के चार सांसद–सिबु सोरेन, सूरज मंडल, साइमन मरांडी तथा शैलेन्द्र महतो को सन् 1993 में कांग्रेस के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव के खिलाफ वोट देने के लिए प्रत्येक को 30 लाख रूपए दिये जाने का मामला भी प्रकाश में आया, जिसके बारे में शैलेन्द्र महतो ने स्वयं 22 मार्च, 1997 को दिल्ली के मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट हरीश दुदानी के समक्ष इकबालिया बयान दिया। 21 अक्टूबर, 1997 को उ0 प्र0 विधानसभा में भाजपा द्वारा बहुमत प्राप्त करने के संबंध में यह आरोप लगाया गया कि उसके द्वारा भी विधायकों की खरीद–फरोख्त का उदाहरण प्रस्तुत किया गया। ऐसा सुनने में आया कि बसपा के एक विधायक को 50 लाख रूपए की पेशकश की गई। यह प्रवृत्ति भी राजनीति में अपराधी को बढ़ावा देने में सार्थक सिद्ध हुआ हैं।

पद का प्रलोभन

दल–विभाजन करने वाले विधायकों को सरकार में मनचाहा पद का प्रलोभन भी एक महत्वपूर्ण कारक रहा है। जैसे वाई सैजा जो दल–बदल कर 1979 में, जनता पार्टी में सम्मिलित हुए, उन्हें मणिपुर का मुख्यमंत्री बनाया गया। पुनः असम में जोगिन्दर सिंह हजारिका जनता पार्टी से दल–बदल कर असम जनता दल में आए, जिन्हें मुख्यमंत्री बनाया गया। सन् 1997 में भाजपा से असंतुष्ट नेता शंकर सिंह बघेला के नेतृत्व में दल–विभाजन (गुजरात) तथा 2 अक्टूबर, 1997 को उ0 प्र0 विधान सभा में भाजपा के कल्याण सरकार के बहुमत हासिल करने के साथ यह बात स्पष्ट रूप से देखने को मिली। कांग्रेस से निकाले गए सभी विधायकों को मंत्री पद से विभूषित किया गया तथा साथ ही बसपा त्याग कर निकले सभी विधायकों को सरकार में अनेक महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करने का कार्य भी किया गया जो साबित करता है कि नेता और अवसरवादी हो गये हैं और सत्ता पर बने रहने के लिए किसी भी स्तर तक गिर सकते है।

जनता द्वारा दल–बदल करने वाले राजनीतिज्ञों को हतोत्साहित न करना

भारतीय जनता का दल–बदल की राजनीति के प्रति उदासीन दृष्टिकोण भी दल–बदल का एक महत्वपूर्ण कारक रहा है। भारतीय जनता (बहुमत) की अशिक्षा तथा राजनीतिक जागरूकता का अभाव इसका एक प्रमुख कारण रही है। यदि जनता की ओर से दल–बदल करने वालों अपराधी प्रवृतियों की भर्त्सना की जाए तथा उनका व्यापक विरोध किया जाए तो निश्चित रूप से जनमत के भय के कारण गलत आचरण वाले विधायक राजनीति से दूर ही रह जायेंगे। अब तक ऐसा देखा गया है कि जनता इस तरफ से प्रायः उदासीन रही है और जनता का दृष्टिकोण उपेक्षापूर्ण न होकर सहानुभूतिपूर्ण रहा है। जैसेदृसन् 1969 में चौधरी चरण सिंह को कांग्रेस छोड़कर ष्जन कांग्रेसष बनाने के बावजूद मध्यावधि चुनाव में भारी सफलता मिली। इतना ही नहीं श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा कांग्रेस छोड़ने के पश्चात् जनता ने उनको सर आँखों पर बैठा लिया और बाद में नौंवी लोक सभा में उन्हें प्रधानमंत्री पद पुरस्कार के रूप में प्राप्त हुआ।

अतः ऐसा स्पष्ट आभास होता है कि जन साधारण की उदासीनता ने विधायकों एवं सांसदों द्वारा दल–बदल करने की प्रवृत्ति को और भी गति प्रदान की क्योंकि चुनावी सफलता को देखते हुए उन्हें विश्वास हो गया कि दल–बदल मतदाताओं की दृष्टि में कोई महत्व नहीं रखता। किन्तु दल–बदल की राजनीति अपराधियों को राजनीति में रहने का सुलभ वर्ग बन गया। सन् 1967 के बाद कांग्रेस का कमजोर होता जनाधार रू सन् 1967 के चतुर्थ सामान्य निर्वाचन के समय पहली बार विरोधी दलों ने कांग्रेस की अजेयता को समाप्त करने का सफल प्रयास किया। बिहार, मद्रास, केरल, उड़ीसा, पंजाब, पं0 बंगाल, हरियाणा तथा मध्य प्रदेश में उनकी स्थिति इतनी सुदृढ़ हो गई कि वे सभी मिलकर सरकार को निर्माण भी कर सकते थे। उनकी सफलता ने कांग्रेस के उन असंतुष्ट तथा उपेक्षित विधायकों के मन में नया महत्वाकांक्षी बल प्रदान किया जो प्रथम निर्वाचन के बाद से ही पद प्राप्ति की आशा लगाए थे। अतः अपना कद ऊँचा करने की महत्वाकांक्षा

के कारण ऐसे नेता कांग्रेस छोड़कर विरोधी दलों में जाने लगे। केवल एक वर्ष की अवधि (1967–68) में 175 विधायक कांग्रेस छोड़कर विरोधी दलों में गए। कांग्रेस से दल–बदल करने वाले 4 विधायकों ने तो विरोधीयों से मिलकर सरकार का गठन किया तथा मुख्यमंत्री पद प्राप्त किया।

भारतीय राजनीति का अस्थिर स्वरूप

भारत में राजनीतिक दलों का इतिहास मुख्यतया विलयन और विभाजन का रहा है, जिसमें विशेष रूप से कांग्रेस पार्टी जोड़–तोड़ के कारण चर्चित रही है। भारतीय राजनीति में जोड़–तोड़ अथवा विभाजन का आरंभ कांग्रेस से ही हुआ। वैचारिक मतभेद के कारण सूरत में सन् 1907 में कांग्रेस में फूट पड़ी और वह दो गुटों में विभक्त हो गई जिसे नरम दल और गरम दल के नाम से जाना जाता है। एक गुट का नेतृत्व गोपाल कृष्ण गोखले तथा दूसरे का नेतृत्व तिलक के द्वारा किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस ने सत्ता में आने पर अपनी स्थिति सुदृढ़ करने तथा सत्ता पर मजबूत पकड़ बनाए रखने के लिए सदैव प्रयास किया। उसने विरोधी दल के सदस्यों का कांग्रेस में आने पर हार्दिक स्वागत किया। ऐसे नेताओं में मुस्लिम लीग के हाफिज मुहम्मद इब्राहिम, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के टी. प्रकाशम्, अशोक मेहता, पी0 टी0 पिल्लै आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस संदर्भ में आचार्य कृपालानी का कथन है कि, ष्अन्य दलों के नेताओं को कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया जाता रहा। अतः स्पष्ट है कि कांग्रेस का लक्ष्य अपनी सदस्य संख्या को अधिक से अधिक बढ़ाना था। 1967 के पूर्व कांग्रेस का जोड़–तोड़ का प्रयास बहुत सीमित दायरे में होता था। यह वह समय था जब पूरे देश में कांग्रेस का वर्चस्व था, लेकिन 1967 के आम चुनाव के बाद कई प्रांतों में विरोधी दलों की सरकारें बनी तो कांग्रेस में पुनः सत्ता प्राप्त करने की राजनीतिक विवशता पैदा हो गई। उल्लेखनीय है कि इस समय कांग्रेस का लोक सभा में बहुमत का प्रतिशत घट चुका था और आठ राज्यों में अल्पमत में आ जाने के कारण कांग्रेस सीमित मात्रा में ही जोड़–तोड़ कर सकी। जोड़–तोड़ करने वाले ऐसे नेता जो मंत्री पद के दावेदार थे, उनकी उपेक्षा हुई । अतः उनके पास दो. विकल्प थे कि या तो दल–बदल करें या राजनीतिक पश्चाताप। उन्होंने दल–बदल करना ही अधिक पसंद किया।

इस प्रकार 1967 से लेकर 1972 तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में अस्थिरता व्याप्त रही। 10 राज्यों में 32 सरकारें गिरी और 7 राज्यों में मध्यावधि चुनाव हुए। इतना ही नहीं 1967 से 1972 के सामान्य निर्वाचनों के बीच भारी मात्रा में लोक सभा और विधान सभा के सदस्यों ने दल–बदल किया। मार्च, 1971 के अन्त तक लगभग 50 प्रतिशत विधायकों ने अन्य दलों में अपनी आस्था व्यक्त की। 1977 से लेकर 1980 के सामान्य निर्वाचन में कांग्रेस (आई.) को अभूतपूर्व सफलता मिली, किन्तु फरवरी, 1980 से फरवरी 1982 के बीच 7 राज्य सरकारें दल–बदल के कारण अपदस्थ हुई। भारतीय राजनीतिक दलों का स्वरूप इतना अस्थिर रहा कि इस दौरान दो राज्य सरकारें कांग्रेस में पूर्ण रूप से निष्ठा व्यक्त करके कांग्रेस की ही सरकारें बन गई। ये सरकारें थीं– सिक्किम में काजी लेंदुप दोरजी (जनता पार्टी) की सरकार और हरियाणा में भजन लाल (जनता पार्टी) की सरकार। इस प्रकार विभिन्न दलों की सिद्धान्तहीनता, नियमों में शिथिलता तथा नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के कारण दल–बदल होते रहे ओर राजनीति अस्थिरता का वातावरण बना रहा।

भारत, जिसकी गणना आज विश्व के दस प्रमुख भ्रष्ट देशों में होने लगी है, में भ्रष्टाचार का मुख्य कारण यहां के राजनेताओं में दृढ़ इच्छा शक्ति का अभाव, व्यक्तिगत भौतिक हितपूर्ति संबंधी दृष्टिकोण एवं राजनीतिक कमजोरी है। राजनीतिक कमजोरी के कारण ही यहां भ्रष्टाचार के कारणों से पूर्ण परिचित होने के बावजूद भी इनके विरुद्ध कार्रवाही करके इन्हें समूल नष्ट करने का कोई भी सार्थक प्रयास राजनीतिक क्षेत्र में नहीं किया जा सकता है। स्वतंत्रता तो प्राप्त हो गई, लेकिन कोई भी भ्रष्ट देश वास्तव में स्वतंत्र नहीं हो सकता, इस सत्य के प्रति लोगों को कभी जागरूक नहीं किया गया । जनता धीरे–धीरे भ्रष्टाचार को अपनी नियति मान बैठी जिसने उसमें भ्रष्टाचार के प्रति उदासीनता का प्रादुर्भाव किया। परिणामस्वरूप, भ्रष्टाचार के प्रति जनता मुखर होने के बजाय मौन होतीगई और उसका यह मौन, भ्रष्टाचार को अपराधिक प्रवृत्ति संवर्द्धन के लिए परोक्ष रूप से उर्वरक का काम करने लगा।

शताब्दियों पराधीनता के वतावरण में पली भारत की अशिक्षित, अजागरूक, बहुसंख्यक गरीब जनता को देश की राजनीतिक आजादी मिलने के बावजूद, वास्तविक आजादी के चरित्र के प्रति अंधकार में रखते हुए, यहां के राजनायकों ने कहीं न कहीं अपने आचरण से देश में भ्रष्टाचार एवं अपराध के प्रचार एवं प्रसार बढ़ने में अपने राजनीतिक चातुर्य का निरन्तर परिचय देता आ रहा है। जनता को भी, लोगों ने, अपने भ्रष्टाचार में सहयोगी बनने हेतु आकर्षित करने के लिए निरंतर नए–नए साधन अपनाए हैं। जनता आश्चर्यजनक रूप से इनकी कुत्सित मनोवृतियों को समझने में असमर्थ रही है। वह आज भी इस सत्य के प्रति जागरूक नहीं है कि कोई भी भ्रष्ट देश वास्तव में स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसीलिए स्वतंत्रता के नाम पर यहां भ्रष्ट लोगों को भी जनता का समर्थन मिलता रहता है। इस संदर्भ में मीडिया की भूमिका भी विवादास्पद रही है। यहां तक कि मीडिया और कुछ उदार बुद्धिजीवियों का भी समर्थन ऐसे लोगों को मिलता रहा है।

जहां भ्रष्ट लोग कम होते हैं, वहां भ्रष्टाचार व्यक्तिगत समस्या होती है और भ्रष्ट तत्वों से व्यक्तिगत स्तर पर निपटा जा सकता है, लेकिन जहां भ्रष्टाचार पूरे समाज में फैला हो, जैसा कि आज हमारे देश में है, तो पूरी व्यवस्था के सुधार करने की आवश्यकता होती है। इसका यह आशय भी नहीं कि कानूनों को और कठोर कर दिया जाए जैसा कि इस समय किया जा रहा है । देखा जाए तो हमारे कानून पहले से ही कठोर हैं। विशेष रूप से, जब न्यायालय में साक्ष्य प्रमाणित करने की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया इतनी कठिन है कि दंड देना भी संभव नहीं हो पाता और अपराधी सजा से मुक्त हो जाते हैं। यह समसया अर्थव्यवस्था पर आधिपत्य स्थापित किए हुए लोगों के संदर्भ में भी आती है। यदि सजा को कम या सरल रखा जाता है तो कोई इसकी परवाह नहीं करता और यदि उसे कठोर बना दिया जाता है तो प्रक्रियागत कमजोरी के कारण किसी को सजा नहीं मिलती। दोनों ही स्थितियों में सार्थक परिणाम नहीं निकलते । कानूनों को प्रभावी बनाने के लिए संतुलन की आवश्यकता होती है। फिलहाल हम संतुलन बना पाने की स्थिति से बहुत दूर है। उत्तर प्रदेश पुलिस की एक सूचना के अनुसार 70 प्रतिशत माफिया प्रमुखों को आज राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है। सन् 1996 में विधान सभा चुनावों के परिप्रेक्ष्य मे गुप्तचर विभाग द्वारा जो सूचना तैयार की गई उसके अनुसार 80 के दशक में जहां राजनीतिज्ञ मात्र 10 माफिया प्रमुखों से परिचित थे, वहीं 1996 तक 75 मे से 54 माफिया प्रमुख, राजनीति एवं राजनीतिज्ञों से जुड़ चुके थे जिसमें 24 माफिया गिरोहों का संबंध समाजवादी पार्टी से, 7 के भारतीय जनता पार्टी से, 13 के कांग्रेस से, 8 के बहुजन समाज पार्टी से बताए गए । जनता इन तथ्यों से भली भांति अवगत है लेकिन उसके पास आंकड़ें नहीं बस पीड़ा मात्र है। अन्य राज्यों में भी लगभग स्थिति यही है । अपराध, राजनीति और काले धन के संबंध में महाराष्ट्र और तमिलनाडू में भी वैसे ही गहरे और सर्वव्यापी है जैसे बिहार अथवा मध्य प्रदेश में।

चुनाव के संदर्भ में पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री टी0 एन0 शेषन का नाम भी विशेष सम्मानके साथ लिया जाता है। वस्तुतः निर्णयों और निर्देशों के क्रियान्वयन के लिए उन्ही प्रशासनिक अधिकारियों पर निर्भर रहना होगा जो नेताशाही के चुंगल में बुरी तरह जकड़ें जा चुके हैं और जो राजनेताओं की कृपा पर किसी प्रकार अपना समय व्यतीत कर रहे हैं । ऐसा नहीं है कि शासनतंत्र में अभी भी ईमानदार राजनेता और प्रशासनिक अधिकारी न हों, किन्तु उसकी संख्या दिन–प्रतिदिन कम होती चली जा रही है और वे सभी अपराध, भ्रष्ट राजनीति और काले धन के बदाव से अपने आप को मुक्त नहीं रख पा रहे हैं। वस्तुतः भ्रष्टाचार अब सर्वव्यापी परिघटना के रूप में स्वीकृत हो चुका है। किसी भी क्षेत्र में भ्रष्टाचार का होना नहीं, बल्कि भ्रष्टाचार का न होना चौंकाता है। व्यक्ति के संबंध में भी यही तथ्य है। पद और संस्था के संबंध में भी यही। प्रधानमंत्री भ्रष्ट नहीं है, इसे कोई मानने को भी तैयार नहीं होता। इसीलिए अब किसी नेता पर किसी अधिकारी पर, किसी क्लर्क अथवा चपरासी पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाने का कोई मतलब नहीं रह गया है। सुनने और पढ़ाने के लिए न इसमें कुछ उत्तेजक रह गया है, न अफसोसजनक । अब प्रायः लोग भ्रष्टाचार की बात गंभीरता से नहीं करते । करोड़ों रूपए के घोटालों की चर्चा करना राजनीतिक विवशता भी है और मीडिया की विवशता भीय ठीक उसी तरह से जिस तरह विना संवेदनशील हुए किसी सामूहिक हत्याकांड की या सामूहिक बलात्कार कांड की खबर छापने की मजबूरी होती है और उस पर संसद में बहस करने की भी। इस तरह विशिष्ट विवशताओं को छोड़ दें तो भ्रष्टाचार और राजनीतिक अपराध आम चिंता और आम विचार की परिधि से बाहर निकल गया है। इसलिए यह ज्यादा चिन्तनीय भी है और विचारणीय भी।

पिछली अर्द्धशदी में उन नैतिक आर्दशों का तेजी से झस हुआ है जो लगभग सौ साल तक हमारे नेतृत्व व अथक प्रयासों के प्रतिफल थे। श्सादा जीवन उच्च विचारश का लक्ष्य आज षविचार रहित उच्च विचारश में परिवर्तित हो गया है कि आगे चलकर अमर्यादित जीवन से अधिक अमर्यादित विचार, का पर्याय बन जाएगा। भौतिक विकास के नाम पर नैतिकता और संवेदनाओं को विदा कर दिया गया है। स्कूलों से व्यावहारिक और वैज्ञानिक शिक्षा के नाम नैतिक शिक्षा को दफना दिया गया है। आम आदमी के नाम पर अव्यावहारिक विकास योजनाएं बनाकर पशुओं पर सरकारी पैसा लुटाया गया है। 1940 के आस–पास कालाबाजारी करने वाले और मुनाफाखोर समाज के खलनायक थे। पचास के दशक में जब सुप्रचारित आधुनिक . भारत के नए तीर्थों का निर्माण प्रारंभ हुआ तो इंजीनियरों और ठेकेदारों ने उनका स्थान ले लिया। वर्ष दर वर्ष,दशक दर दशक यह विकृति अबाध गति से बढ़ती गई और उसने पूरे भारतीय समाज को अपनी चपेट में लिया। हमारे सार्वजनिक जीवन के स्वप्न दृष्टा स्वयं तो समृद्ध हो गए और देश विनाश के कगार पर आ गया। आज खोखले आश्वासन राजनीतिक कुशलता का पर्याय बन गए हैं जो कि अव्यावहारिक इच्छाओं के प्रादुर्भाव एवं विकास के सहयोगी है। समाज का बहुत बड़ा हिस्सा

आजीवन खून–पसीना बहाने के बावजूद जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से वंचित है जबकि कुछ लोग अपने असीमित स्वार्थों की पूर्ति कर रहे हैं। उनकी तात्कालिक मौतिक सफलता स्वार्थ के अनैतिक मानकों और लालच के दर्शन पर आधारित है जो कि पूरे समाज को श्रृंखलाबद्ध करती है। इससे समाज में,जो कुछ भी हो सकता, छीन लेने की होड़–सी लगी है। चाहे उसके लिए गलत या सही कोई भी साधन क्यों न अपनाना पड़े। समाज के प्रत्येक भाग में किसी भी तरह शीघ्रातिशीघ्र समृद्ध या धनवान् होने की प्रवृति का वर्चस्व है। हर कोई अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लघु मार्ग अपनाना चाहता है। लंबे रासे पर चलना कोई नहीं चाहता । राजनीतिक सत्ता हो या कुछ और

कोई भी लक्ष्य योग्यता और वैधानिक रीति से प्राप्त नहीं किया जा सकता। योग्य नागरिक भी अवैध साधनों और धोखे का सहारा लिए बिना उसे प्राप्त नहीं कर सकते । वस्तुतः जब समाज में भ्रष्टाचार और दुराचरण न्यूनतम स्तर पर होता है तो भ्रष्टों का जीवन सरल नहीं होता, क्योंकि भ्रष्ट जब अपनी सीमा को अतिरेक करने लगता है तो वैधानिक स्तर पर उसे निषिद्ध कर समाज से खोटे सिक्के की तरह अलग कर दिया जाता है। लेकिन जब अधिक से अधिक अपराधी एवं भ्रष्ट पृष्ठभूमि के लोग संसद के चुनाव जीत कर उच्च पदों पर आसीन हो जाते हैं और बिचौलिए समाज के प्रत्येक हिस्से को अपनी गिरफ्त में लेकर संचालित करने लगते हैं तो भ्रष्टाचार कोई मुद्दा नहीं रह जाता और उसकी प्रासंगिकता विशुद्ध उद्देश्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। – आश्चर्य है कि एक सामान्य अशिक्षित व्यक्ति से राजनीति को कोई नुकसान नहीं है जितना जनप्रतिनिधियों से होता है। राजनेता एक तरफ चुनाव के दौरान मतदान केन्द्रों पर कब्जा कराते हैं तो दूसरी तरफ उच्च सदनों के लिए होने वाले अप्रत्यक्ष मतदान के अवसर पर वातानुकूलित होटलों और पर्यटन केन्द्रों में बैठकर मतदाताओं को लुभाते हैं। सदन में विश्वास अथवा अविश्वास मतदान के अवसर पर क्या होता यह सभी जानते हैं, निन्दा भी करते हैं, मगर बार–बार उसकी पुनरावृति भी होती रहती है।

व्यवहार में निजी जीवन में भी यह बात देखी जाती है कि किसी राजनीतिज्ञ की अपने दल की सैद्धान्तिक राजनीतिक विचारधारा चाहे कुछ भी हो, निजी व्यवहार में इससे उनका कोई संबंध नहीं रहता। लगभग अधिकांश नेता पहली बार मौका मिलते ही पूर्व के सामन्तों और नरेशों की तरह रहने लगते हैं। अपने बच्चों को वह पढ़ने के लिए बाहर समृद्ध देशों में भेजते हैं। वे निजी हित में ऐसे सभी व्यवहार करते हैं जिसकी सत्ता में रहने या सत्ता से बाहर रहते हुए सार्वजनिक रूप से कटु आलोचना करते हैं। वे अपने बच्चों को अमेरिका में शिक्षा दिला कर डॉक्टर या इंजीनियर बनाना चाहते हैं। ऐसे नेता देशवासियों को सलाह देते हैं कि उन्हें अपने बच्चों को अपनी भाषा और शिक्षा के अनुकूल स्थानीय सरकारी स्कूलों में पढ़ाएँ जबकि वे स्वयं अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से उच्च स्तरीय निजी विद्यालयों में पढ़ाते हैं जिससे कि वे देश में और देश से बाहर रोजगार के अवसरों का लाभ उठा सकें । अन्य विभाग में भी इससे अलग नहीं है। राजनेता भारत के स्वास्थ्य केन्द्रों अर्थात् साधारण अस्पतालों में अपना इलाज नहीं कराना चाहते । पहला अवसर मिलते ही वे विदेश जाकर वहां इलाज कराते हैं।

निष्कर्ष :

राजनीति शब्द आज, भारत में एक गालीबना गया है । गलत उद्देश्यों से किए जाने वाले सभी कार्य इस श्रेणी में आते हैं । जो लोग स्वार्थजनित गलत कार्यों में लिप्त रहते हैं कहा जाता है कि वे राजनीति कर रहे हैं। इसमें आश्चर्य नहीं ऐसे लोगों में राजनेत ही अधिक होते है जो कि देश के लिए घातक है। मुख्यतः ऐसे सभी गलत कार्य वोट बैंक पर नियंत्रण पाने के लिए होते हैं। विडम्बना यह है कि जहां एक तरफ देश के विभाजन से पैदा हुए घाव अब तक हरे हैं वहीं दूसरी तरफ राजनेताओं का समूह अपने चुनावी हितों के देखते हुए कभी आरक्षण के सवाल पर तो कभी साम्प्रदायिक मुद्दों को लेकर जनता को विभाजित करने की कोशिशों में लगा हुआ है। साम्प्रदायिकता हो या आरक्षण राजनेता इस तरह दिन–प्रतिदिन आगे बढ़े जा रहे हैं कि पीछे लौटने की हर संभावना समाप्त होती जा रही है। प्रत्येक व्यक्ति को जन्म और जाति से जोड़ कर देखने की यह प्रवृति जनसामान्य को बर्बरता के अंधे युग की ओर धकेल रही है। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि जातीय दुर्भावना की विषवेल स्वातन्त्रोत्तर भारत में उसे समय से ही फल–फूल रही है जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों से देश पंडित नेहरू के नेतृत्व में विकास की ओर बढ़ रहा था। आज स्वतंत्रता के 63 साल बाद वही जातिगत भावना पूरे देश को अपने आगोश में ले चुकी है। इससे पूरा चुनावी वातावरण दूषित हो गया है। जाति के आधार पर चुनाव लड़ने वाले नेता ही जाति का तर्क देते हैं, ऐसा नहीं है। चुनाव के दौरान जातिगत उन्माद पैदा कर जनता को भावनात्मक स्तर पर मड़काना आज सामान्य बात है जो कि देश में राष्ट्रीयता के विकास में बाधक है। निक भ्रष्टाचार आज देश के सार्वजनिक जीवन में गहराई से प्रवेश कर चुका है और विधायिका का लगभग प्रत्येक व्यक्ति इसकी गिरफ्त में है। आज राजनीतिज्ञों का एक ऐसा वर्ग बन चुका है जो राजनीति को व्यवसाय के रूप में स्थापित करने में लगा है। मानसिकता बदल रही है। ऐसे में परिवर्तन की आवश्यकता है। परिवर्तन जीवन में आत्यावश्यक है–जैसा कि नेपोलियन ने कहा है–ष्व्यक्ति जो शासन जैसे महान् कार्य में लगे रहते हैं उन्हें अधिक उम्र हो जाने पर अपना पद त्याग देना चाहिए।ष भारत जैसे देश में शासन के संदर्भ में नेपोलियन की उक्ति निःसंदेह विचारणीय है। यहाँ राजनेताओं के लिए न तो किसी शैक्षिक योग्यता का निर्धारण है और न ही उम्र की कोई सीमा । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक ही राजनीतिक दल का लम्बे समय तक चलने वाला शासन का भी परिणाम अच्छा नहीं रहा। इससे राजनीति में अधिनायकवाद का एक वर्चस्व बढ़ा, व्यक्तिवादी राजनीति को बढ़ावा मिला एवं भ्रष्टाचार का पोषण हुआ। साथ ही जनसामान्य की शिक्षा एवं उनकी राजनीतिक सोच के विकास का मार्ग भी अवरूद्ध हुआ है।

संदर्भ स्रोतः

- भीखू, पारिख (एडीटेड) एंड बर्की, आर0 एन0 : दी मोरेलिटी ऑफ पॉलिटिक्स, जार्ज – एलेन एंड अनविन लिमिटेड, लंदन, 1972 पृ0–51–55

- बख्शी, उपेन्द्र रू दी इंडियान सुप्रीम कोर्ट एंड पॉलिटिक्स, ईस्टर्न बुक कंपनी, लखनऊ, 1980 पृ0–48–50
- बख्शी, उपेन्द्र रू ऑन दि शेम ऑफ नाइट बीडंग इन एक्टिविस्ट थाट ऑन जूडिशियल एक्टीविज्म, इंडियन बार रिब्यू, वॉल्यू0 –2 (3), 1984 पृ0–65–68
- बसु, डी0 डी0 : लिमिटेड गवर्नमेंट एंड ज्यूडीशियल रिव्यू एस0 सी0 सरकार एंड सन्स, कोलकाता, 1972 पृ0–57–60
- बेल, जॉन रू पॉलिसी ऑ!मेन्ट्स इन ज्यूडीशियल डिसीजन्स, क्लेरेन्डन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1983 पृ0–25–31
- ब्रोगेन, डी0 डब्ल्यू0 : पॉलिटिक्स एंड लॉ इन दि यूनाईटेड स्टेट्स यूनीवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1994 पृ0–68–72
- कोनोलो, ई0 विलियम रू पॉलिटिक्स एंड ऐम्बीगुइटी, दि युनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन प्रेस, 1967 पृ0–70–75
- कार्डोजो, बी0 : दि नेयर ऑफ ज्येडीशियल प्रासेस, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, हेवेन, 1921 पृ0 –80–83
- कॉक्स, आर्चीबाल्ड रू दि रोल ऑफ सुप्रीम कोर्ट इन अमेरिका गवर्नमेंट क्लेरेन्डॉन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1976 पृ0–45–48
- दास, बी, सी. रू पॉलिटिक्स डेवलपमेन्ट इन इंडिया य आशीष पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 1978 पृ0 –75–81–